Editorial: *Therī Paṭācārā*

Having lost her entire family in a tragic sequence of events, *Paṭācārā* wandered in a state of shock and madness, stripped of all awareness and clothed in destitution. Owing to the force of her past merits, she one day passed near Jetavana Monastery, where the Blessed One was delivering a discourse to a large assembly. Seeing her approach, the crowd attempted to drive her away, fearing that this distraught woman might disturb the gathering.

However, the Buddha noticed her and restrained the people. The sorrow-stricken woman came forward. With boundless compassion, the Buddha addressed her: “My poor daughter, regain your awareness.” His voice carried a healing force. Hearing these words, she gradually recovered clarity. Realizing that she was unclothed, she felt shame and crouched on the ground. Someone nearby covered her with a robe, which she immediately wrapped around herself.

Having previously fallen into degraded conduct, she later became known as *Paṭācārā* after her ordination.

Approaching the Blessed One, she prostrated fully, touching the ground with her hands, feet, and head, and pleaded: “Venerable Lord, grant me refuge. I am utterly afflicted.”

The Buddha replied reassuringly: “Daughter, you have come to the right refuge. Here you shall indeed find protection.”

She then recounted her tragedies: her husband bitten by a serpent; one child carried away by a vulture; another swept away by a river; her parents and brother crushed to death and cremated together. “I have no one left in this world. Who will give me refuge?” Overwhelmed by grief, she wept again.

The Buddha instructed her gently: Parents, children, and relatives cannot provide ultimate refuge. When death seizes a being, no kin can protect them. In the beginningless cycle of existence, she had shed more tears over lost loved ones than the waters of the four great oceans. How long would she continue to grieve in this endless cycle? True refuge lies in the Dhamma one practices and realizes.

Hearing these words, her mind gradually became concentrated and inwardly composed. She directly perceived the arising and passing away within her own body. Through the power of accumulated merit, insight into impermanence arose, washing away the burdens of the past. There itself she attained the first stage of liberation, becoming a stream-enterer (*sotāpanna*).

Filled with gratitude, she sought ordination and was admitted among the *bhikkhunīs*. She progressed firmly on the path. Yet residual mental formations remained to be purified.

One evening, while washing her feet, she observed that the poured water flowed a short distance and dried. Pouring again, the water flowed farther before drying. A third time, it flowed still farther and then vanished. This simple observation awakened profound insight: just as water dries at different points, so too lives end at different ages. Death spares none.

Meditating on this truth of impermanence, she recalled the Buddha's verse:

"Though one should live a hundred years
without seeing arising and passing away,
better is a single day lived
seeing arising and passing away."
— Dhammapada 113

Inspired, she reflected that she had wasted many years without perceiving this truth. Through renewed determination in *Vipassanā* practice, she continued observing the impermanent nature of body and mind. As she tended a lamp whose flame dimmed and then went out, she realized that just as the flame was extinguished, so too could the fires of craving, aversion, and delusion be extinguished.
That very night she progressed through the higher stages of realization and attained arahantship. The cycle of becoming was broken. Complete liberation was achieved.
Paṭācārā later guided five hundred women who had suffered the loss of children. Through her instruction, they too realized the impermanent nature of life and attained liberation, as recorded in the *Therīgāthā* (127–132). In these verses they declare that the arrow of grief has been removed and that they take refuge in the Buddha, Dhamma, and *Saṅgha*.
Paṭācārā became one of the foremost female disciples of the Buddha. Among the *bhikkhunīs* she was declared pre-eminent in knowledge and observance of Vinaya discipline. She devoted the remainder of her life to guiding sorrowing women toward freedom from suffering. In doing so, she embodied the transformative power of insight and compassion.

At Jetavana, the Blessed One once declared to the monks: "Among my *bhikkhunī* disciples who are foremost in mastery of discipline, *Paṭācārā* is supreme."

Dr Sanghmitra Baudh,
Editor Bodhipath

संपादिका - थेरि पटाचारा

एक दुर्घटनावश अपने पूरे परिवार को खो चुकी अपनी सुध-बुध खोई विक्षिप्त निर्वस्त्र विपन्नावस्था में अपने पूर्व पुण्य के कारण वह एक दिन जेतवन विहार के पास से गुजरी। वहां भगवान एक बड़ी सभा को धर्म समझा रहे थे। लोगों ने उसे आते देखा तो दूर भगाना चाहा। कहीं यह पगली औरत धर्मसभा की शांति में विघ्न न पैदा कर दे।

परंतु भगवान की नजर उस दुखियारी पर पड़ी तो लोगों को रोका। दुखियारी भगवान के समीप आयी।
भगवान ने करुणाभरे शब्दों में कहा, "मेरी दुखियारी बेटी! होश संभाल!" वाणी में अमृत भरा था। सुनते ही उस दुखियारी को जरा-सा होश आया। उसका ध्यान अपने सर्वथा नग्न शरीर पर गया तो लाज के मारे सिकुड़ गयी। वहीं उकडूं बैठ गयी। समीप खड़े किसी भाई ने उस पर अपनी चादर डाली। उसने तुरंत चादर ओढ़ ली। वह उपसम्पदा प्राप्त करके पूर्व में पतित आचार वाली होने के कारण 'पटाचारा' नाम से प्रख्यात हुई।

पटाचारा भगवान के और समीप आयी और अपने दोनों पांव, दोनों हाथ और सिर धरती को छुआ कर पंचांग प्रणाम करती हुई बोली, "भंते भगवान! मुझे शरण दीजिये, मैं बहुत दुखियारी हूं।"
"बेटी! तू सही शरण-स्थल पर आ गयी है। तुझे यहां अवश्य शरण मिलेगी।" भगवान ने आश्वासन-भरे शब्दों में कहा।
"भंते भगवान! मेरे पति को काले नाग ने डस लिया । एक पुत्र को गिद्ध दबोचकर ले गया। दूसरे को नदी बहा ले गयी। माता पिता, भाई दब कर मर गये। उन्हें एक साथ चिता पर जलाया गया। अब संसार में मेरा कोई नहीं। मुझे कौन शरण देगा?" अपने दुःख को याद कर पटाचारा फिर फूट-फूटकर रोने लगी।

"बेटी, होश में आ। माता-पिता, भाई-बंधु, पति-पुत्र शरण नहीं दे सकते । सही शरण तो अपना धारण किया हुआ धर्म ही देगा। तू कौन-से प्रिय स्वजनों की मृत्यु पर दुःख के आंसू बहा रही है? इस अनादि भव संसार में तूने अनगिनत बार जन्म लिया है। सभी जन्मों में तेरे प्रिय स्वजन मरे हैं। उनके मरने पर तूने जितने आंसू बहाये हैं, यदि एक जगह एकत्र कर दिये जायं तो इन चारों महासमुद्रों का जल भी उनके मुकाबले कम होगा। और कितने जन्मों तक इसी प्रकार प्रिय-वियोग में रोती रहेगी?

पुत्र रक्षा नहीं कर सकते, न पिता और न ही बंधुजन । जब मृत्यु पकड़ लेती है तब जाति वाले रक्षा नहीं कर सकते । प्रमाद छोड़! होश में आ! समझदार को चाहिये कि इस असीम दुःखमय भवसागर की सच्चाई को समझ कर शीघ्र-से-शीघ्र मुक्ति का मार्ग खोजे और सदा के लिये दुःखविमुक्त हो जाय।"

भगवान की वाणी से अमृत बरसा। भगवान की वाणी सुनते-सुनते उस दुखियारी का चित्त एकाग्र हुआ। थोड़ी देर के लिये स्वमुखी हुई, अंतर्मुखी हुई। शरीर के अणु-अणु में उदय-व्यय की प्रत्यक्ष अनुभूति हुई। अनेक जन्मों की असीम पुण्य पारमी के कारण इस अनित्य बोध की धर्मगंगा में सारे पाप ताप धुलने लगे। वहीं बैठे बैठे पटाचारा ने निर्वाण अवस्था का साक्षात्कार किया। स्रोतापन्न हुई।

कृतज्ञता-विभोर हो भगवान को नमस्कार किया और उनसे प्रव्रज्या की याचना की। भगवान ने उसे भिक्षुणियों के पास भेज कर प्रव्रजित करवाया। पटाचारा मुक्ति के मार्ग पर दृढ़तापूर्वक आरूढ़ हुई।
जो भव-संस्कार बचे थे, उनका सामना करना था। उन्हें भी अंतर्तप करते हुये विपश्यना की अग्नि में जलाना था। काम करने में कठिनाइयां आ रही थीं।

कभी-कभी अकाल मृत्यु को प्राप्त हुये स्वजनों, प्रियजनों की फिर याद आ जाती थी। एक दिन सायंकाल दृढ़ चित्त से साधना की तैयारी में लगी। बाल्टी से लोटा-भर जल लेकर अपने पांव धोये । सूखी जमीन पर बहता हुया जल कुछ ही दूर जा कर सूख गया। आगे न बढ़ पाया। एक लोटा जल पांव पर और डाला। इस बार जलधारा पहले की अपेक्षा कुछ और दूर जा कर सूख गयी। तीसरी बार पांव पर जल डाला तो जलधारा कुछ और भी दूर जाकर सूख गयी।

इस छोटी-सी घटना ने भीतर के ज्ञानतंतुओं को झकझोर दिया। मोहजन्य अज्ञान का पर्दा दूर हुआ। जैसी जलधारा वैसी ही जीवनधारा । इस संसार में किसी-किसी की जीवनधारा कम उम्र में ही सूख जाती है। किसी-किसी की अधेड़ उम्र में और किसी किसी की बढ़ी उम्र में। पर मरते तो सभी हैं। कोई नहीं बचता। इस मरणानुस्मृति के आधार पर साधना
करने बैठी। उसी समय भगवान के अमृतभरे बोल कानों में गूंज उठे :

"यो च वस्ससतं जीवे, अपस्सं उदयब्बयं ।
एकाहं जीवितं सेय्यो, पस्सतो उदयब्बयं ॥"
धम्मपद *(११३)*

[(पंचस्कंध के) उदय-व्यय को न देखने वाले (व्यक्ति) के सौ वर्ष के जीवन से उदय-व्यय को देखने वाले (व्यक्ति) का एक दिन का जीवन श्रेयस्कर होता है।]

धर्मवाणी सुन कर साधिका पटाचारा का रोम-रोम रोमांचित हो उठा। मैंने जीवन के पच्चीस वर्ष अपने भीतर उदय-व्यय का दर्शन किये बिना ही गँवा दिये। अब भगवान की असीम अनुकंपा से इस सत्य का साक्षात्कार हुआ है। इसी सत्य के प्रति साक्षीभाव रखने से मुझे निर्वाण के प्रथम दर्शन हुये थे। इसी उदय-व्यय का निरंतर दर्शन करते-करते आगे की अवस्थाएं प्राप्त होंगी। किसान खेत में परिश्रम करता है। जोतता है, बोता है तो फल प्राप्त करता है। मैं शुद्ध शील में प्रतिष्ठित बुद्ध-पुत्री! उनके बताये मार्ग पर अप्रमत्त हो पुरुषार्थ करूं तो परम मुक्त अवस्था प्राप्त कर ही लूंगी ।

यो निश्चय करके अपनी कुटिया में विपश्यना करने बैठी। समीप जलते हुये दीपक की लौ मंद पड़ने लगी तो सुई से ठीक करने की कोशिश की, परंतु इससे लौ बुझ गयी। फिर अंतर्बोध जागा। जिस प्रकार इस दीपक की लौ बुझी, उसी प्रकार मेरे राग, द्वेष और मोह के संस्कारों की लौ बुझेगी और मनुष्य-जीवन सार्थक होगा। पटाचारा अधिक दृढ़ चित्त से विपश्यना में लग गयी। शरीर और चित्त के प्रपंच को उसके अनित्य स्वभाव में तटस्थ भाव से देखते-देखते अंतर्मन पर पड़ी हुयी भव-संस्कारों की परतें उतरने लगीं और रात बीतने के पहले ही वह स्रोतापन्न

से सकदागामी, सकदागामी से अनागामी और अनागामी से अहंत अवस्था तक जा पहुंची। भवचक्र टूटा। नितांत विमुक्ति मिली। मनुष्य-जीवन सफल हुआ; सार्थक हुआ।

पटाचारा की पांच सौ भिक्षुणी-शिष्याएं एसी थी जिन्होंने विवाह उपरांत गृहस्थ जीवन व्यतीत किया। किंतु संतान वियोगवश शोकाभिभूत होकर उन्होंने पटाचारा का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। पटाचारा की शिष्याएं होने के कारण इन्हें वर्गगत रूप से 'पंचसता पटाचारा' अर्थात 'पांच सौ पटाचाराएं' भी कह कर पुकारा गया। पटाचारा ने उनको जो उपदेश दिया और उसका उन पर जो असर पड़ा, उसी का दिग्दर्शन इन गाथाओं में है :-

["जब तुम प्राणी के आने-जाने का मार्ग ही नहीं जानतीं, किस पथ से आया था, किस पथ से चला गया! इतना तक जिसके विषय में तू नहीं जानती; तब उसके लिये तू 'मेरा पुत्र! मेरा पुत्र!' कह-कह कर क्यों रोती है?"]
["वह किस पथ से आया, किस पथ से चला गया! इतना यदि तुझे ज्ञात भी हो; तो भी तू रुदन क्यों करे? यह तो प्राणियों का स्वभाव ही है!]
["बिना पूछे वह आया था, बिना आज्ञा लिये चला गया! कतिपय दिनों के लिये वह कहीं से आया था, कतिपय दिन ठहर कर वह फिर कहीं चल दिया! एक पथ से आगमन दूसरे पथ से गमन, यहां एक मार्ग से आया यहां से दूसरे मार्ग से चला गया!]["वह तो मनुष्य रूप में प्रेत सदृश है, जो संसरण करता हुआ जायगा। जैसे वह आया था, वैसे ही वह चला गया, उसके विषय में क्यों रोना!]

पटाचारा के इन उपदेशों पर चिंतन-मनन करती हुई विपश्यना की वृद्धि के साथ अर्हत्व का साक्षात कर उपर्युक्त पांच सौ भिक्षुणियों में से प्रत्येक भिक्षुणी कहती है :-

["पुत्र शोक-रूपी जो दुर्दश शल्य मेरे हृदय में गहरा बिंधा हुआ था, जिस पुत्र शोक ने मुझे अभिभूत कर रखा था, वह आज निकल गया!"]
["मैं परिनिर्वृत्त हुई, शोकशल्य से मुक्त हुई, आज मैं मुनि बुद्ध, उनके धर्म और संघ की शरण लेती हूं।"]
थेरीगाथापालि (१२७-१३२)

पटाचारा भगवान की प्रमुख शिष्याओं में से एक हुई। जिन थोड़े से भिक्षु-भिक्षुणियों, गृहस्थ पुरुष-नारियों को भगवान ने अग्र की उपाधि दी, उनमें से पटाचारा भी एक थी। भिक्षुणियों के विनय नियमों को अच्छी तरह जानने और उनका पालन करने वाली भिक्षुणियों में पटाचारा अग्रगण्य मानी गयी। उसने अपना संपूर्ण शेष जीवन अपनी जैसी दुखियारी नारियों को धर्म के मार्ग पर आरूढ़ कर दुःख-मुक्त कराने में ही बिताया। अपने कल्याण के साथ-साथ अनेकों के कल्याण का कारण बनी। पटाचारा विपश्यना को और विपश्यना पटाचारा जैसी भिक्षुणी को पाकर धन्य हुई। एक बार श्रावस्ती के जेतवन आराम में भगवान भिक्षुओं के बीच बैठे थे। उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित किया "भिक्षुओ! मेरी भिक्षुणी श्राविकाओं में ये अग्र हैं - विनय-धारियों में अग्र है पटाचारा।"

डॉ संघमित्रा बौद्ध,
संपादिका बोधिपथ